International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493; Impact Factor: RJIF 5.46
Received: 05-02-2021; Accepted: 20-02-2021; Published: 31-03-2021
Volume 3; Issue 1; 2021; Page No. 22-25

डॉ. लक्ष्मीनारायण लालः हिन्दी के प्रमुख नाटककार

डॉ. मनोज कुमार कैन
पी.जी.डी.ए.वी. महाविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल उन्नीस सौ साठ से अस्सी के बीच के हिंदी के महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध नाटककार हैं। उन्होंने अपने नाटकों में जगह–जगह विविध प्रयोग किए हैं और इस प्रयोगधर्मिता में वे अत्यंत खरे भी उतरे। समकालीन प्रश्नों को प्रतीकात्मक और रोचक शैली में प्रस्तुत करना डॉ. लाल की विशिष्ट नाट्य–वृत्ति रही है। नाट्य लेखन के लिए उन्होंने जिस भी विषय को उठाया उस पर काफी गंभीरता से अध्ययन–मनन किया। विषय से संबंधित व्यक्तियों, स्थानों, ऐतिहासिक अभिलेखों आदि का अध्ययन करने के बाद ही निष्ठा के साथ वे उनसे जुड़ते हैं। वे जीवन पर्यंत नाट्य गतिविधियों में ही व्यस्त रहे। कभी नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के बच्चों के बीच तो कभी अनामिका नाट्य संस्था के रिहर्सलों में। डॉ. लाल ने समय की माँग, मंच की जरूरत को समझकर ही लघु नाटकों की रचना की है। उनके लघु नाटकों में कला और तकनीक के स्तर पर प्रयोगशीलता, यथार्थ बोध और कला को उत्तरोत्तर गतिशीलता देने का आग्रह स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

मूल शब्दः प्रसिद्ध नाटककार, विशिष्ट नाट्य–वृत्ति, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल

प्रस्तावना

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल हिंदी के प्रसिद्ध नाटककार हैं। हिंदी नाट्य लेखन में उनकी विशिष्ट पहचान है। अपने नाटकों में उन्होंने जगह–जगह विविध प्रयोग किए हैं और इस प्रयोगधर्मिता में वे खरे भी उतरे। डॉ. लाल अपने नाटकों में प्रयोग के प्रति हमेशा सचेत रहने वाले नाटककार हैं। समकालीन प्रश्नों को प्रतीकात्मक और रोचक शैली में प्रस्तुत करना डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल की विशिष्ट नाट्य–वृत्ति रही। रामचंद्र तिवारी के अनुसार "डॉ० लाल ने 'वस्तु' और 'शिल्प' दोनों स्तरों पर अनेक प्रयोग किये हैं। ग्राम्य जीवन में बढ़ते हुए आर्थिक दबाव से उत्पन्न पारिवारिक इन्द्र का चित्रण किया है। शहरी मध्यवर्ग के जीवन में नये–पुराने मूल्यों का संघर्ष दिखाया गया है। स्त्री–पुरष सम्बन्धों की जटिलता का विश्लेषण किया है। 'जीवन किसका है?' 'इसका स्वामी कौन है?' जैसे दार्शनिक प्रश्न उठाये हैं। 'मनुष्य की नियति मनुष्य के ही हाथ में है' जैसे समाधान दिये हैं। अनेक पौराणिक सन्दर्भों को आधुनिक जीवन सन्दर्भों से जोड़ा है। नारी–मन की जटिलता का साक्षात्कार किया है और अन्त में आधुनिक होने–बनने के प्रयत्न को छोड़कर एक शब्दातीत शक्ति का अनुभव किया है।शिल्प के स्तर पर आपने लोक नाट्य शैली, आधुनिक यूरोपीय नाट्य शैली और भारतीय नाट्य शैली सभी के प्रयोग किये हैं।"[1] यह वृत्ति उनके नाटकों में पूर्णतया दिखाई पड़ती है।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का जन्म 4 मार्च, 1927 को उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के जलालपुर गाँव में एक साधारण कायस्थ परिवार में हुआ था। उनका आरम्भिक जीवन इसी गाँव में बीता। गाँव से एक मील दूर स्थित बहादुरपुर बाजार के प्राइमरी स्कूल से प्राइमरी शिक्षा और पिपरागौतम गाँव के मिडिल स्कूल से मिडिल स्कूल पास करने के बाद उन्होंने एंग्लो संस्कृत हाई स्कूल से हाई स्कूल की शिक्षा प्राप्त की। 1948 ई. में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक, एम.ए. और डी.फिल. की उपाधि प्राप्त करने के बाद उन्होंने सी.एम.पी. कॉलेज इलाहाबाद, इलाहाबाद विश्वविद्यायल और दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य किया। उन्होंने नेशनल बुक ट्रस्ट में एडिटर का कार्य भी किया और साथ ही साथ स्वतंत्र लेखन का कार्य भी करते रहे।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का मन शुरू से ही नाट्य लेखन में लगा रहा। 1956 में उन्होंने इलाहाबाद में नाट्य केन्द्र की स्थापना की। वे हमेशा नाट्य गतिविधियों में ही व्यस्त रहते थे; कभी नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के कच्ची उम्र के बच्चों के बीच और कलकत्ते के शिक्षातन कॉलेज की अध्यापिकाओं और अनामिका नाट्य संस्था के रिहर्सलों तक डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल सुगमता सरलता, से व्यस्त रहे। वे कभी–कभी उपन्यास, कहानी और आलोचना भी लिखा करते थे। उन्होंने लेखन के लिए जो विषय उठाया उस पर काफी गंभीरता से अध्ययन–मनन करते। वे विषय से संबंधित व्यक्तियों, स्थानों, ऐतिहासिक अभिलेखों आदि का अध्ययन करने के बाद ही निष्ठा के साथ उनसे जुड़ते थे।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल मूलतः नाटककार हैं। रंगमंच से उनका गहरा लगाव था, जैसाकि नेमिचन्द्र जैन ने लिखा है "लक्ष्मीनारायण लाल ने नाटक लेखन रंगमंच से लगाव के साथ ही शुरू किया और वह रंगकार्य के अनेक पक्षों से संबद्ध रहे हैं और हैं। इसीलिए उनके अधिकांश नाटकों का प्रदर्शन भी हुआ है।"[2] इसी विधा से उनके लेखन का सूरज चमका। डॉ. लाल लगातार नाटक लिखते रहे। विद्यार्थी जीवन में उनके द्वारा लिखी गई नाट्य–रचना 'मादा–कैक्टस' नाट्य विधा की एक उपलब्धि मानी जाती है। यदि हम यह कहें कि 60–80 के बीच में सबसे महत्वपूर्ण काम करने वाले नाटककार लाल ही हैं तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। नेमिचंद्र जैन ने तो उन्हें हिंदी का सर्वाधिक उपजाऊ नाटककार कहा है, "इसी बीच कई अन्य नाटककार भी अपने अपने ढंग से हिंदी नाटक की अपनी अस्मिता की तलाश में हाथ बंटा रहे थे। इनमें लक्ष्मीनारायण लाल इस दौर के सबसे उपजाऊ नाटककार हैं।"[3]

1951 ई. में उनके छः एकांकियों का संग्रह 'ताजमहल के आँसू' प्रकाशित हुआ। यह उनके रचनात्मक प्रशिक्षण का समय था। बावजूद इसके एकांकी विधा के विकास में उन्होंने अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। जैसाकि गिरीश रस्तोगी ने भी लिखा है "प्रसाद के 'एक घूँट' एकांकी से लेकर राम कुमार वर्मा, जगदीश चन्द्र माथुर, भुवनेश्वर, उपेन्द्रनाथ अश्क और आगे चलकर लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, गिरिराज किशोर, सुरेन्द्र वर्मा आदि के अनेक एकांकियों–से आधुनिक विषयों, शैलियों और शिल्पगत प्रयोगों का विकास हुआ।"[4] उनका इसी

समय उनके दो अन्य एकांकी संग्रह 'पर्वत के पीछे' और 'अंधा कुआँ' प्रकाशित हुए। इस दौरान डॉ. लाल प्रयोग के धरातल पर भी उतर आए। इसी प्रयोगधर्मिता की उपज है, 1953 ई. में लिखा उनका नाटक 'मादा–कैक्टस'। इस नाटक में उन्होंने कुछ नए प्रयोग भी किए। इसमें पहली बार हिन्दी का कोई नाटक पात्र प्रेक्षकों को सम्बोधित करता है। इस नाटक की भाषा भी डॉ. लाल के अन्य नाटकों से अलग है। इस नाटक में डॉ. लाल ने प्रतीकों का प्रयोग किया है। वह प्रतीक है– कैक्टस। डॉ. लाल ने पहली बार इसमें समकालीन नाटक और रंगमंच में व्याप्त तथ्यपरकता और भौंडे यथार्थवाद का विरोध किया और नाटक में विद्रूप तथा 'एब्सर्ड' को जारी किया। इस नाटक में कथोपकथन शैली को नकार कर सवाल–जवाब नुमा बातचीत के स्थान पर नाटकीय संवाद की प्रतिष्ठा की गई है।

डॉ. लाल ने अपने परवर्ती नाटकों 'सुदंर रस' (1955), 'रातरानी' (1956), 'दर्पण' (1957), और 'रक्त कमल' (1960) की दिशा और दशा को प्रगतिशील रंगमंचों के विकास की ओर बढाया। उनके नाटक 'रातरानी' की भूमिका नाटक और रंगमंच के सम्बन्ध, नाट्य लेखन की शर्तों, नाटककार–निर्देशक–अभिनेता आदि के सह–अस्तित्व, समीक्षक के दायित्व आदि के विषय में अनेक प्रश्न उठाती है। 'दर्पण' नाटक में खण्डित व्यक्तित्व और अभिशप्त नियति को अभिव्यक्ति मिली है। इस नाटक में दोहरे व्यक्तित्व के द्वन्द्व से जूझते व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से विश्लेषित किया गया है। एक ही पात्र का अलग–अलग नाम रखकर उनके मानसिक द्वंद्व और खंडित व्यक्तित्व को चित्रित किया गया है। इस द्वंद्व में नाटक के अंत में सबल व्यक्तित्व जीतता है। 'दर्पण' नाटक इसी उद्देश्य का प्रतीकात्मक रूप से पूर्ति करता है। 'रक्त कमल' में देवता की क्षत–विक्षत स्थिति भारत के जीर्ण–शीर्ण स्थिति का प्रतीक है। कमल की कविता में प्रयुक्त बिम्बों द्वारा नाटक का प्रभाव उभारा गया है।

दिल्ली प्रवास के दौरान डॉ. लाल ने 1966 ई. में 'संवाद' नामक नाट्य संस्था की स्थापना की। इस दौरान उन्होंने सबसे महत्वपूर्ण नाटक लिखे। 'मिस्टर अभिमन्यु', 'कलंकी', 'अब्दुल्ला दिवाना' (1973), 'कर्फ्यू' (1971), 'सूर्यमुख' (1975) इस काल की उनकी प्रमुख नाट्य कृतियाँ हैं। ये नाटक 'सम्वाद' और कुछ अन्य नाट्य संस्थाओं द्वारा समय–समय पर खेले जाते रहे हैं। 'मिस्टर अभिमन्यु' नाटक पौराणिक संदर्भों और वर्तमान में हुए परिवर्तन तथा चरित्र और मूल्य में आए बदलाव आदि विषय वस्तु को स्पष्ट करता है। पौराणिक काल में अभिमन्यु हुए थे, जिसने धर्म की विजय के लिए चक्रव्यह में प्रवेश किया था। इस नाटक का आदर्शों की विजय के लिए चक्रव्यूह में प्रवेश करता है। चक्रव्यूह में वह घिर जाता है, फिर वह उसे तोड़ने का प्रयत्न करता है। इस प्रक्रिया में उसकी आत्मा तो मारी जाती लेकिन वह जीवित रह जाता है। उसका जीवित रह जाना मृत्यु से भी करूण है। आज के अभिमन्युओं की यही ट्रेजेडी है। अभिमन्यु की संज्ञा द्वारा डॉ. लाल ने विभिन्न त्रासद स्थितियों, चरित्रों और मूल्यों के क्षरण को बड़े चुभते ढंग से प्रस्तुत किया है। 'कलंकी' नाटक हमारी अकर्मण्यता और मोहनिद्रा के विरूद्ध एक आह्वान है। यह नाटक व्यक्ति के आत्म साक्षात्कार को नया संदर्भ प्रदान करता है। यह साक्षात्कार व्यक्ति और समाज दोनों का है। इसलिए यह नाटक एक व्यापक जीवन यथार्थ को हमारे समक्ष रखता है। इस यथार्थ का सम्बन्ध हमारी अंध–आस्थाओं के प्रकटीकरण और वर्तमान राजनीतिक व सामाजिक दशा से पीड़ित मनुष्य की उस दयनीय अवस्था से है, जिसमें वह यह विचार कर अकर्मण्य पड़ा रहता है कि कोई दैवीय शक्ति ही इससे उसे मुक्त कराएगी। इन्हीं स्थितियों को ध्यान में रखकर कलंकी अवतार के 'मिथ' को हमारे समक्ष रखा गया है।

नाटक 'अब्दुल्ला दीवाना' में अब्दुल्ला आत्मा का प्रतीक है। जब मनुष्य आत्मा की आवाज सुनता है, तो वह ठीक काम करता है। इस नाटक में ड्रिल के दृश्य द्वारा पूरी व्यवस्था पर चोट करने का वर्णन किया गया है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने 'सूर्यमुख' नाटक द्वारा परम्परा को तोड़ा है। उनके नाटकों विचार करते हुए नेमिचंद्र जैन ने भी लिखा है कि "उनके हर नाटक में मूल नाटकीय विचार बड़ा दिलचस्प और संभावनापूर्ण होता है और कई बार उनके चरित्रों की परिकल्पनाओं में भी नाटकीयता और उपज दीख पड़ती है । व्यक्ति के सुख–दुख की व्यापक सामाजिक–राजनीतिक स्थितियों से गहरे संबंध की चेतना और शोषित–पीड़ित जनसाधारण के लिए सहानुभूति और लोकजीवन से लगाव भी उनमें मौजूद है।"[5] पाठकों–दर्शकों की बद्धमुल धारणाओं पर आघात किया है। इसमें डॉ. लाल एक विद्रोही रचनाकार दिखाई पड़ते हैं। 'सूर्यमुख' का प्रमुख धरातल प्रेम ही है।

1974 में डॉ. लाल ने महानगरीय बोध को आधार बनाकर 'व्यक्तिगत' नाटक लिखा। यह नाटक कथ्य के धरातल पर एक कलात्मक प्रयोग है। आजादी के बाद देश के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक क्षेत्र में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हुई। 'व्यक्तिगत' नाटक इस स्थिति को प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यक्त करता है। नाटक में व्यक्ति 'आदि' सर्वनाम से बढ़ता है और अंततः इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि आज के युग में व्यक्ति का कुछ भी 'व्यक्तिगत' नहीं है। 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' (1975) नाटक का केन्द्रीय पात्र लौका है। लौका के ही चारों तरफ यह पूरा नाटक घूमता है। लौका के द्वारा हरिश्चन्द्र के मिथक को आधार बनाकर आधुनिक संघर्षरत इंसान का वर्णन किया गया है। यह नाटक भाषा, कथ्य, चरित्र, रंगशैली और नाटकीयता के आधार पर भी हिंदी नाट्य लेखन परंपरा में एक नवीन प्रयोग है।

'संस्कार ध्वज' नाटक भी एक सफलतम कृति है। 'सगुन पंछी' (1976) और 'तोता मैना' नाटकों में गीतों और पात्र परिकल्पना के नवीन रूप और प्रयोग दृष्टव्व हैं। जंगल के पक्षी राजा, रानी, गंगा, मन्त्री आदि के प्रतीक हैं। जंगल के पक्षियों द्वारा स्त्री–पुरुष के सनातन सम्बन्ध, संघर्ष और एकता को संवादों के माध्यम से कहानी का रूप देकर नवीन प्रयोग डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने किया है। 'नरसिंह कथा' (1976) नाटक में समय सापेक्ष प्रासंगिकता का वर्णन है। इस नाटक के दोनों पात्र पौराणिक होते हुए भी वर्तमान में उपस्थित हैं। ये पात्र दुर्व्यवस्था के बीच हमेशा टकराते रहते हैं। यही वजह है कि डॉ. लाल के नाटक पौराणिक होते हुए भी आज के नाटक हैं।

ध्वनि प्रयोगों में भी डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल एक कुशल नाटककार हैं। कहीं–कहीं उनका यह प्रयोग अत्यधिक कलात्मक भी हो जाता है। ध्वनि–प्रभावों का प्रयोग डॉ. लाल ने वातावरण निर्माण और प्रेक्षकों की उत्सुकता को बढ़ाने के लिए किया है। कहीं–कहीं वे इसके द्वारा स्थितिजन्य तनाव को गहराते हैं तो कहीं पात्र की मनःस्थिति को सम्प्रेषणीय भी बनाते हैं। यह प्रयोग उनके नाटक 'अंधा कुआँ' में भी देखने को मिलता है। 'कथा–विसर्जन' नाटक में आधुनिक जीवन–बोध और परम्परागत बोध की टकराहट अभिव्यक्त हुआ है। इसमें नाट्य प्रयोग को अभिव्यक्ति भी है। 'गुरू' भी डॉ. लाल का सफल नाटक है। चरित्र योजना की दृष्टि से 'यक्ष प्रश्न' भी उनका अनुपम नाटक है। 'राम की लड़ाई' नाटक के पात्र रचनात्मक और ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करते हैं। डॉ. लाल ने अपने अनेक नाटकों में पात्रों के चरित्र को प्रकट करने और उन्हें उभारने हेतु विभिन्न प्रयोग किए हैं। इसमें उन्हें पूरी तरह सफलता भी मिली है। डॉ. गिरीश रस्तोगी के शब्दों में कहें तो, "संपूर्ण रूप से डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल नाट्य, शिल्प, रंगमंच, कथानक के विषय और अपने चारों ओर के वातावरण परिस्थितियों–युग–जीवन के प्रति सजग नाटककार हैं।"[6] 'अरूण कमल एक', 'उत्तर युद्ध, और 'गंगामाटी' भी उनकी सफल नाट्य रचनाएं हैं।

यदि लघु नाटक की बात करें तो डॉ. लाल के लघु नाटक एक नया प्रयोग ही थे। उनकी पुस्तक लिपि प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुई जिसका शीर्षक है– 'दूसरा दरवाजा व अन्य लघु नाटक'। यह पुस्तक 1975 ई. में प्रकाशित हुई। इसके प्रकाशन के बाद ही लघु नाटक विधा को एक नया रूप मिला। रामचंद्र तिवारी के अनुसार "सन् 1970 के आस–पास से 'लघुनाटक' लिखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। कुछ दृश्यों में पूरा नाटक प्रस्तुत कर दिया जाता है। कभी यह दो अंकों में समाप्त है और कभी अंकों का विभाजन किया ही नहीं जाता। दृश्य–परिवर्तन से ही कार्य–व्यापार के उतार–चढ़ाव का बोध करा दिया जाता है।"[7] इस पुस्तक में 'दुसरा दरवाजा', 'हाथी घोड़ा चूहा', 'काफी हाऊस में इन्तजार' आदि लघु नाटक संकलित हैं। डॉ. लाल ने समय की माँग, मंच की जरूरत को समझते हुए लघु नाटकों की रचना की। उनके लघु नाटकों में कला और तकनीक के स्तर पर प्रयोगशीलता, यथार्थ बोध और उत्तरोत्तर कला को गतिशीलता देने का आग्रह स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। डॉ. लाल ने अपने समय की समस्याओं का लघु नाटकों द्वारा प्रस्तुतीकरण प्रमुखतः सबसे पहले किया। इसप्रकार 'लघु नाटक' विधा को हमारे समक्ष रखने वाले डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ही थे। उन्होंने इस पुरानी विधा को नये प्रयोग द्वारा नाट्य जगत में स्थान दिलाया। यह एक नया शिल्प प्रयोग भी था।

दूसरा दरवाजा (1975) मानसिक संघर्षों के मध्य संतापों को भोगने की स्थिति का नाट्य रूपांतरण है। इस लघु नाटक में डॉ. लाल द्वारा जटिल सामायिक परिस्थितियों को अभिव्यक्ति देने के लिए ऐसी शैली को अपनाया गया है और इसी के मध्य मनुष्य जीवन के तिक्त यथार्थ और अपरिहार्य जीवन–बीध को उभारा गया है। ऐसा बोध हमारे आंतरिक आवेगों, उद्वेगों तथा भविष्य का एक अन्त और अबाध दृश्य हमारी आँखों के सामने उत्पन्न करता है। यह यथार्थ जीवन के चारों ओर बुना जा रहा है। राजनीतिक चक्र में पिसते हमारे सामाजिक और नैतिक जीवन–मूल्यों की जो दुर्गति पिछले कुछ वर्षों में हुई है, उन स्थितियों को यह लघु नाटक दर्शाता है। इस लघु नाटक में डॉ. लाल ने पुरुष को सुत्रधार के रूप में उपस्थित किया है जो जीवन में घटित विभिन्न पहलुओं का विवेचन करता है। व्यक्ति एकांत रूप से कुछ भी करता रहे, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसे अच्छा–बुरा तभी लगता है, जब कोई अन्य उसे देखकर उस पर टिप्पणी करने लगता है। इस लघु नाटक द्वारा यह भी स्पष्ट हो जाता है कि केवल औपचारिकता हेतु संस्थाओं में एप्लीकेशन फार्म भरवाये जाते हैं, इंटरव्यु लिए जाते हैं, डिग्रियाँ देखी जाती हैं। भारत देश में यदि कोई आदर्श नागरिक बनकर जीना चाहता है, सुधार चाहता है, स्वतंत्रता चाहता है, तो उसे आज के भ्रष्टाचारी और शोषित वर्ग ऐसा न करने के लिए विवश करते हैं। आज का मानव विवश है, चाहकर भी वह स्वतंत्र नहीं रह सकता है। ऐसे मानव की स्थिति देखकर विचारक रूसो का कथन स्मरण होता है 'व्यक्ति पैदा जो स्वतंत्र होता है, परन्तु जगह–जगह बन्धनों में जकड़ा हुआ है'। नाटक कहीं–कहीं भाग्य और ईश्वरवाद दर्शन की ओर उन्मुख दिखाई पड़ता है। व्यक्ति को चारों ओर से मार दिया गया है, वह इन स्वार्थी, भ्रष्टाचारी लोगों के खिलाफ चाहकर भी कुछ कार्यवाही नहीं कर सकता।

रंगमंच की दृष्टि से भी यह लघु नाटक सफल कृति है। नाटक को पढ़ने पर ऐसा महसूस होता है कि मंच को ध्यान में रखकर ही इसकी रचना की गई है। डॉ. लाल ने इसके आरम्भ में और बीच–बीच में कुछ मंच संकेत भी दिए हैं। इसकी मंच व्यवस्था इतनी उन्मुक्त एवं उपयुक्त है कि इसका प्रदर्शन किसी भी मंच पर आसानी से किया जा सकता है। इसके लिए अधिक संसाधनों की आवश्यक्ता नहीं पड़ेगी। इस लघु नाटक के वाक्य, संवादों में गत्यात्मकता, सरलता, हास्यपूर्ण व सशक्त, सुभिव्यक्तिपूर्ण स्थितियां मंच के अनुकुल दिखाई पड़ती हैं। डॉ. लाल ने इस नाटक द्वारा प्रतीकात्मक ढंग से वर्तमान स्थिति का चिट्ठा खोलकर रख दिया है। 'दूसरा दरवाजा' प्रतीक रूप में उस बुरे दरवाजे को दर्शाता है, जिसके द्वारा सभी बुरे काम करना सम्भव है। इस नाटक में प्रासंगिकता है। यह वर्तमान दशा की स्पष्ट तथा सटीक अभिव्यक्ति करता है। नाटक में अनेक स्थानों पर प्रतीकात्मक रंग शैली का प्रयोग है। सभी दृष्टियों से यह लघु नाटक डॉ. लाल की सफल एवं उत्तम है।

'हाथी घोड़ा चूहा' (1978) लघु नाटक में वर्तमान अफसरशाही (जिसमें पद पर आते ही मूल्य–बोध समाप्त हो जाता है) को हाथी, घोड़ा और चूहे जैसे पशु प्रतीकों द्वारा स्पष्ट किया गया है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने इस नाटक का आरम्भ नौटंकी और नयी प्रयोगात्मक शैली के रूप में किया गया है। मंच सूना पड़ा है; तभी दर्शकों से आवाजें, बोलियाँ, सीटियों का स्वर उभरने लगता है। दशकों के हास्यपद कथनों द्वारा प्रेक्षागृह में शोर–शराबा होने लगता है। नाटक आरंभ न होने के कारण दर्शकों में तरह–तरह के विचार आने लगते हैं। वे कुछ भी ध्यान में न रखकर अभद्र भाषा का प्रयोग भी करते हैं। दर्शकों के इस व्यवहार को देखकर एक स्त्री को कहना पड़ता है कि "प्लीज बिहेव प्रापरली" क्यों डिस्टर्ब करते हो? जिसे जाना हो, वह बाहर जाकर लड़ें–झगड़ें। तभी एक दर्शक उठकर मंच पर चला जाता है और नाटक के बारे में बताने लगता है और पात्रों का परिचय देते हुए कहता है कि इस नाटक में तीन बड़े अफसरों को पात्र के रूप में लिया गया है। उन अफसरों को बीमारी की हालत में नर्सिंग होम लाया गया है। उनकी बीमारी अजीब है, उन्हें किसी भी वक्त दिल और दिमाग का दौरा पड़ जाता है, एकाएक ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है...आदि घट जाता है। इतना कुछ होने पर भी तीनों अफसर अभी तक जिंदा हैं। मंच पर खड़ा दर्शक बैठे हुए दर्शकों के बीच से ही अभिनेताओं को मंच पर बुलाता है और एक दर्शक का दिया हुआ नाम 'हाथी घोड़ा चूहा' ही नाटक का नाम रख देता है। वह दर्शक निवेदन करता है कि हुटिंग न करें, न इनके ऊपर कुछ फेंके। वैसे मेरा विश्वास है कि आप शरीफ लोग सड़े अंडे, टमाटर, मूली वगैरह अपने साथ नहीं लाए होंगे। पुनः वह दर्शकों से कहता है– नाटक समझ न आए, तो इसमें अभिनेताओं का कोई कसूर नहीं है; यदि नाटक अच्छा न लगे तो इसकी जिम्मेदारी उन पर जरूर है; इन चरित्रों के नाम नहीं होंगे। इसके बाद मुख्य नाटक आरंभ होता है। डॉ. लाल ने इसमें अफसरों की मनः स्थिति को चित्रित किया है। इस रचना में नये प्रयोग भी किए हैं, जैसा कि नाटककार एक दर्शक से कहलवाता है– आजकल कुछ भी संभव है, तो इस नाटक में कुछ भी हो सकता है। नाटक में आम भाषा के शब्दों का प्रयोग इसकी संप्रेषणीयता को और अधिक सशक्त बनाता है। जैसे 'इतना' शब्द को 'इत्ते' कहना। अंग्रजी के शब्दों की भी नाटक में अधिकता है। नाटककार ने किसी भी चीज से परहेज नहीं किया है, बशर्ते कि वह जो कहना चाहता है उसे पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति मिले। डॉ. लाल ने रंगमंच सम्बन्धी समस्याओं को भी उभारा है– आज के दर्शकों को रंगमंच की दिक्कतों को समझना होगा, तभी थियेटर सामने आ सकता है। एक पात्र आगंतुक को उन्नीस सौ पच्चपन से लेकर अब तक नौकरी नहीं मिलती और उसमें मनुष्यता बनी रहती है। डॉ. लाल की ऐसी मान्यताएं सोचने पर विवश करती हैं। अगर नौकरी से व्यक्ति पशु बनने लगे, तो कोई भी मनुष्य नौकरी न करे। अफसर नौकरी मिलने पर अपने मूल्यों, संस्कार और यहाँ तक कि अपने आप तक को भूल गए हैं। नाटक में कहीं–कहीं नाटककार ने प्रेरणा भी दी है– जैसे एक तरह मानव यू.डी.सी. जैसी छोटी नौकरी से ऊँचे पद वाली नौकरी तक पहुँचता है, तो दूसरी ओर आगंतुक के लिए निराशा भी प्रकट की है। वह बी.ए. करने के बाद भी बेरोजगार घूम रहा है। उसे तरह–तरह की मानसिक, शारीरिक, स्नायविक बीमारियाँ भी लग जाती हैं। कई जगहों पर हास्यास्पद स्थिति भी नाटक में दिखाई

पड़ती है। किसी कार्य को करने में जब कोई अफसर सफल नहीं होता, तो उसका दोष वह दूसरे पर मढ़ने लगता है। 'नाच न जाने आँगन टेढ़ा' जैसी उक्तियों को डॉ. लाल ने यथार्थवादी दृष्टि से बहुत अच्छी तरह विश्लेषित किया है।

लघु नाटक में कई जगह अतिनाटकीयता की स्थिति भी देखने को मिलती है। कई प्रसंगों में कथा को विस्तार दिया गया है। नाटककार रंगमंच संबंधी जानकारी नाटक में देते हुए चलता है। नाटक प्रासंगिकता लिए हुए है। हम कह सकते हैं कि इस लघु नाटक में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल की प्रयोगात्मक प्रतिभा का प्रतीकात्मक रूप में मौलिक, सफल और समृद्ध प्रयोग है।

'कॉफीहाउस में इन्तजार' (1975) लघु नाटक में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने कॉफीहाउस को भारत मानकर उसमें कुर्सी के लिए हो रहे झगड़े को चित्रित किया है। कुर्सी पर कोई सज्जन पुरूष बैठा हुआ है। नई पीढ़ी का नौजवान (पहला) पुरूष उस कुर्सी को हर तरह के प्रयत्नों द्वारा पा लेना चाहता है। सज्जन पुरुष के चाहने वाले (बेयरा) उसे कुर्सी से उतारना नहीं चाहते, क्योंकि वह उसके उपकार के नीचे दबे हुए हैं। यह नाटक वर्तमान के राजनीतिक झगड़ों को दर्शाता है। नाटक आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितना उस समय था, जब वह लिखा गया। इसमें एक तीसरा व्यक्ति भी है, जो कुर्सी से किसी तरह का सम्बन्ध नहीं रखता, उसे अपने हक और भारतवर्ष से लगाव है। उसने स्वतंत्रता की लड़ाई में भी भाग लिया था। सभी पात्र देश की समस्याओं को दूर करने के लिए मिलकर लड़ने के बजाय अपनी निजी समस्याओं से लड़ते दिखाई देते हैं। इसलिए वे छोटी–छोटी बातों को भी बहुत बड़ा बनाकर देखने लगते हैं। यह समस्या वर्तमान की भी है। हमारा जीवन एकाकी होकर स्वार्थीपन से प्रत्येक कार्य करने में लगा है। देश हित के लिए कोई भी सक्रिय नहीं दिखायी पड़ता।

इस लघु नाटक में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने प्रतीकात्मक शैली द्वारा आज के राजनीतिक परिदृश्य को स्पष्ट और सहज रूप से हमारे सामने प्रस्तुत किया है। मंच व्यवस्था का जिक्र भी शुक्र में ही किया है। संवादों के अन्दर ताजगी और नयापन है। पात्रों की तरह भाषा भी चुस्त एवं गतिमान है। यह एक सफल लघु नाटक है। यह एब्सर्ड नाट्य परम्परा के निकट दिखाई देता है। इसके बाद भी डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल निरन्तर लघु नाटक लिखते रहे। जैसे– 'कथा विसर्जन', 'गुरू', 'यक्ष प्रश्न', 'उत्तरयुद्ध' आदि।

अंत में डॉ. वीणा गौतम के शब्दों में कहें तो "हिंदी नाटक के इतिहास में लक्ष्मीनारायण लाल 'मील का पत्थर' हैं। उनके नाटकों में लाल की अंतपरतें खुद–ब–खुद मनुष्य के अंत बाह्य द्वंद्वों, संघर्षों, कुंठाओं, हसरतों, गाँठों, उलझनों का खनन कर महत्वपूर्ण भूमिका आ जाती है।"[8]

संदर्भ सूची

1. हिंदी का गद्य साहित्य– डॉ. रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ– 360
2. आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच– नेमिचंद्र जैन (सं.), दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1978, पृष्ठ– 126–127
3. वही., पृष्ठ– 126
4. नाटक और रंगमंच : नयी दिशायें, नये प्रश्न– गिरीश रस्तोगी, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद,1999, पृष्ठ– 25
5. आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच– नेमिचंद्र जैन (सं.), दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1978, पृष्ठ– 126
6. हिंदी नाटक सिद्धांत और विवेचन– गिरीश रस्तोगी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ–33
7. हिंदी का गद्य साहित्य– डॉ. रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ– 380
8. हिंदी नाटक आज तक– डॉ. वीणा गौतम, शब्द सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 261